हिंदी के श्रृंगार समन्वित भक्त कवि विद्यापति

डॉ. बालेन्द्र सिंह यादव
एसोसिएट प्रोफेसर- हिन्दी
डॉ.अंबेडकर राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
ऊंचाहार-रायबरेली,मो0 न0- 9410009838

शोध सार-बिहार प्रांत के मधुबनी जिले के बिस्फी गांव में जन्में **विद्यापति** भारतीय साहित्य की 'शृंगार-परम्परा' के साथ-साथ 'भक्ति-परम्परा' के प्रमुख स्तंभों में से एक थे। विद्यापति के समय में बहुत सारे संप्रदाय और मत थे। कोई वैष्णव था, कोई शैव था, तो कोई शाक्त। लेकिन विद्यापति शिव, विष्णु और शक्ति तीनों की आराधना करते थे। इसलिए इन्हें वैष्णव, शैव और शाक्त भक्ति के सेतु के रूप में स्वीकार किया जाता है। विद्यापति वैसे तो मिथिला के राजा कीर्तिसिंह और शिव सिंह के दरबारी कवि थे। पर दरबार संपोषित रचनाकार होने के बावजूद उनके स्वभाव में चारण वृत्ति तनिक भी न थी। वे संस्कृत, अपभ्रंश(अवहट्ठ) और मैथिली भाषा के विद्वान थे। विद्यापति की उपलब्ध एक दर्जन से अधिक रचनाओं में कीर्तिलता, कीर्तिपताका अपभ्रंश में और पदावली मैथिली हिन्दी में लिखी मिलती है और सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। शेष में से अधिकांश रचनाएं संस्कृत में लिखी मिलती हैं। उनको मैथिली का सर्वोपरि कवि माना जाता है। उनकी रचना **पदावली** में मध्यकालीन मैथिली भाषा के उत्कृष्ट स्वरूप के दर्शन होते हैं। उनका प्रभाव केवल मैथिली और संस्कृत साहित्य तक ही नहीं था, बल्कि अन्य पूर्वी भारत की साहित्यिक परम्पराओं तक भी था। विभिन्न भाषाओं में व्यापक ज्ञान होने के बावजूद जब कवि अपनी भाषा में लिखना पसंद करता है तो यह कवि के लचीलेपन को प्रदर्शित करता है। निम्न छंद में उनकी मान्यता स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है–

सक्कअ वाणी बहुअन भावई। पाउअ रस को मम्म न पावइ॥
देसिल बयना सब जन मिट्ठा। तै तैसन जम्पओ अवहट्ठा॥

अर्थात बहुत से लोग संस्कृत सीखने में रुचि नहीं रखते हैं। प्राकृत को आम जनता गलत समझती है। हर किसी को अपनी भाषा में बोलना अच्छा लगता है। इसलिए मैं उसी देशी शैली- अवहट्ट में लिख रहा हूँ।

बीज शब्द- संपोषित, अवहट्ट, देसिल, बयना, पदावली, ब्रजबुलि, गीतगोविंद, मैथिलकोकिल, शृंगारिक, भक्तिपरक, लोकोन्मुख।

मूल आलेख-विद्यापति हिन्दी के बड़े कवि हैं। उन्होंने संस्कृत में तो रचनाएं लिखी हीं, अवहट्ठ और मैथिली में भी लिखकर जन-जन के प्रिय बन गए। विद्यापति के समय तक मैथिली को साहित्यिक माध्यम के रूप में नियोजित नहीं किया गया था। पहली बार विद्यापति ने ही 'देसिल बयना सब जन मिट्ठा' यानी अपनी भाषा सबको प्रिय होती है कहकर सबसे पहले अपनी मातृभाषा के महत्व को समझा और फिर साहित्य को लोकभाषा से मिलाया। उन्होंने मैथिली में पदावली रचने का काम अपने समकालीन संस्कृत विद्वानों की आलोचना के बावजूद जारी रखा। देश भाषा मैथिली में रचित उनकी 'पदावली' अपनी भाषागत मिठास और राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं के वर्णन के कारण केवल मिथिला प्रदेश (बिहार) में ही नहीं अपितु बंगाल, असम और ओडिशा में भी लोकप्रिय रही है। बंगाल के चैतन्य महाप्रभु और ओडिशा के रामानंद राय जैसे महान कृष्ण भक्त विद्यापति की 'पदावली' से गहरे प्रभावित थे। यानी मिथिला के लोग जहां-जहां गए उनके साथ विद्यापति के गीत और संस्कार भी गए। वैष्णव भक्तों के प्रयास से इन गीतों का प्रचार-प्रसार मथुरा-वृंदावन तक हुआ। मिथिला समेत पूरे पूर्वांचलीय प्रदेशों-बंगाल, असम एवं उड़ीसा में वैष्णव साहित्य के विकास में भाव एवं भाषा माधुर्य के कारण विद्यापति की 'पदावली' का अपूर्व योगदान रहा है।

ऐसे महाकवि के जन्म और मृत्यु के वर्षों और जन्मस्थान को लेकर लंबे समय तक विवाद और मतभेद चलता रहा है। माना जाता है कि वे शतायु थे और उनका कालखंड 1350-1450 ई. के आसपास था। वैसे भी हमारे यहाँ अक्सर महापुरुषों के जीवन-मृत्यु का काल निर्धारित करते समय दुविधा रहती है तो कवि कोकिल विद्यापति भी इसके अपवाद नहीं हैं। विद्वानों ने उनके जीवन के संबंध में पर्याप्त तर्क-वितर्क किया और अपने विचारपूर्वक खोजबीन के बाद जो रूपरेखा बनाई है वो उनकी रचनाओं में प्राप्त संकेतों और अन्य साक्ष्यों या जनश्रुतियों पर आधारित है। अवहट्ठ में लिखी उन्हीं की एक कविता की कुछ प्रारंभिक पंक्तियों के आधार पर उनका जन्म 1350 ई. (लक्ष्मण संवत 241) तय होता है। इससे अधिक प्रामाणिक कोई गणना नहीं हो सकती।

विद्यापति का जन्म उत्तरी बिहार के मिथिला क्षेत्र के वर्तमान मधुबनी जिला के विस्फी (अब बिस्फी) गाँव में एक शैव ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनका पूरा नाम विद्यापति ठाकुर था। वे बिसइवार वंश के विष्णु ठाकुर की आठवीं पीढ़ी की संतान थे। उनकी माता गंगा देवी और पिता गणपति ठाकुर थे। कहते हैं कि उनके माता-पिता ने कपिलेश्वर महादेव (वर्तमान मधुबनी जिला में स्थित एक तीर्थ) की घनघोर आराधना की थी, तब जाकर ऐसे पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। विद्यापति बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि और रचनाधर्मी स्वभाव के थे। दस-बारह वर्ष की बाल्यावस्था से ही वे अपने पिता के साथ तिरहुत के शासक राजा गणेश्वर के दरबार में जाने लगे थे। साहित्यिक कौशल, पांडित्य और अन्य लक्षण विद्यापति को अपने वंश की ऐतिहासिक विरासत के रूप में प्राप्त हुए। उनके

पिता एक प्रसिद्ध पंडित, दादा जयदत्त एक योगी संत और परदादा एक मैथिल ब्राह्मण गुरु थे। इतना ही नहीं महामहोपाध्याय हरि मिश्र उनके गुरु, गुरुभाई महामहोपाध्याय पक्षधर मिश्र उनके सहपाठी, विदुषी चंदा देवी एवं विद्वान पुत्र उनके पारिवारिक जन के रूप में उन्हें प्राप्त हुए। विद्यापति ने अपने अनुकूल परिस्थितियों का पूरा लाभ प्राप्त करते हुए बहुत सारे काव्य ग्रंथ लिखे। उनकी 14 रचनाएँ उपलब्ध हैं .

1- कीर्तिलता, 2-कीर्तिपताका, 3- पदावली, 4-लिखनावली, 5-भूपरिक्रमा, 6-गया पत्रक 7-प्रमाण भुव पुराण संग्रह, 8-पुरुष परीक्षा, 9-दुर्गाभक्तितरंगिणी, 10-दान वाक्यावली, 11-गंगावाक्यावली, 12-विभव सागर, 13-वर्ष कृत्य, 14-शैव सर्वस्व सार।इन सभी में सर्वाधिक लोकप्रिय कीर्तिलता, कीर्तिपताका अवहट्ट (उत्तर अपभ्रंश) में और पदावली मैथिल हिन्दी में लिखी मिलती है। बाकी सभी रचनाओं को संस्कृत भाषा में लिखा गया है।

कीर्तिलता-कीर्तिलता अवहट्ट (उत्तर अपभ्रंश) भाषा में विद्यापति द्वारा 1402 ई० में लिखा एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक चरित काव्य है। इसमें उन्होंने अपने आश्रयदाता महाराज कीर्ति सिंह के राज्याभिषेक, उनकी वीरता, उदारता, शासन करने की क्षमता, युद्ध अभियान संचालित करने की प्रतिभा आदि के बारे में काफी प्रशंसात्मक वर्णन किया है। कीर्ति सिंह के युद्ध कौशल और चारित्रिक विशेषताओं के अंकन में तो कवि की निपुणता है ही उस समय के भारत की राजनीतिक और सामाजिक वास्तविकताओं के जीवंत चित्रण करने में भी विद्यापति दक्ष हैं। कीर्तिलता में जौनपुर और उसके शासक इब्राहिम शाह शर्की के तुर्की चरित्र का भी विशद और सुन्दर चित्रण मिलता है।

कीर्तिपताका- कीर्तिपताका में विद्यापति ने अपने दूसरे आश्रयदाता महाराज शिव सिंह की ख्याति की विस्तृत व्याख्या की है। रचना के आरंभ में चंद्रचूड़ अर्धनारीश्वर शिव और उनके पुत्र गणेश के रूप-अर्चना की वंदना की है। तदनंतर शिव सिंह के प्रेमपूर्ण व्यवहार का बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है। यह भाषाओं की एक विस्तृत श्रृंखला है। इसमें कई जगह ज्यादातर संस्कृत में लिखे पद भी मिलते हैं।

पदावली- 'पदावली' विद्यापति की सर्वाधिक लोकप्रिय रचना मानी गई। और पदावली के कारण विद्यापति हिन्दी साहित्य में सर्वाधिक प्रसिद्ध है। जयदेव के 'गीतगोविन्द' से प्रभावित विद्यापति ने 'पदावली' को मधुर और कोमल गीतों के साथ विभिन्न रागों में गाये जाने के लिए मैथिली में रचा था। मैथिली को ब्रजबुलि के नाम से भी जाना जाता है। 'पदावली' विभिन्न समय में लिखे गये मुक्तक पदों का एक संकलन है। इस कृति के माधुर्य और गेयता के कारण विद्यापति को 'अभिनव जयदेव' कहा गया है और हिन्दी गीत परम्परा में पदावली को विशेष स्थान प्रदान किया गया है। इसकी हस्तलिखित प्रतियां नेपाल दरबार के पुस्तकालय में संरक्षित हैं। इसके कई संस्करण निकले हैं जिसमें पदों की संख्या हर जगह एक समान नहीं है। नगेन्द्रनाथ गुप्त के संकलन में पदों की सबसे अधिक संख्या 245 है।

"विद्यापति के पदों की मधुरता और योग्यता के गुणों को अद्वितीय मानते हुए अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने लिखा है कि "गीत गोविन्द के रचनाकार जयदेव की मधुर पदावली पढ़कर जैसा अनुभव होता है, वैसा ही अनुभव विद्यापति की पदावली पढ़ कर होता है। अपनी कोकिल कंठता के कारण ही उन्हें 'मैथिल कोकिल' कहा जाता है।"[1]

विद्यापति का युग मिथिला सहित पूरे भारतवर्ष के लिए राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से उथल-पुथल से भरा था। दिल्ली से लेकर बंगाल तक की यात्रा में आक्रमणकारियों और आक्रांताओं के जय-पराजय की अपनी अपनी स्थिति थी। आक्रमण को जाते हुए उत्साह में और लौटते समय पराजय की हताशा में सैनिक कहाँ - कितना - किसको आहत करते थे, उन्हें खुद भी पता नहीं होता था। पर उसकी दहशत सामान्य नागरिक के मन पर सदैव विद्यमान रहती और वो कभी व्यवस्थित नहीं रह पाते थे। सिलसिलेवार आक्रमणों के इस बर्बर समय में बड़े कौशलपूर्ण ढंग से सामाजिक दायित्व निभाने की जरूरत थी। इतिहास साक्षी है कि हर काल के बुद्धिजीवी अपने समकालीन समाज और शासन को दिग्दर्शित करते आए हैं। विद्यापति ने भी सौंदर्य और प्रेम को अपने रचना-विधान का मुख्य विषय बनाकर प्रत्यक्ष परिस्थितियों में स्पष्टतः उपस्थिति लोक जीवन की हताशा को दूर करने का काम किया। "विद्यापति की 'पदावली' ने प्रेम, भक्ति और नीति के सहारे बड़ा काम किया। पदलालित्य, माधुर्य, भाषा की सहजता, मोहक गेयधर्मिता से मुग्ध होकर समकालीन और अनुवर्ती साहित्य-कला प्रेमी एवं भक्तजन भाषा, भूगोल, संप्रदाय, मान्यता, जाति-धर्म के बंधन तोड़कर विद्यापति के पद गाने लगे थे।"[2] विद्यापति कर्म, धर्म, दर्शन, न्याय, सौंदर्य, संगीत आदि शास्त्रों के प्रकांड पंडित थे। संस्कृत, अवहट्ट और मैथिली- तीन भाषाओं में रचित उनकी रचनाएँ इस बात की गवाह हैं कि विद्यापति शास्त्र और लोक के संपूर्ण विस्तार पर अपना असाधारण अधिकार रखते थे। विद्यापति जहाँ एक ओर ओय बार वंश के कई राजाओं की शासकीय रीति-नीति देखकर अनुभव संपन्न हुए थे, तो वहीं दूसरी ओर समकालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियों के बीच पनप रहे लोक-वृत्त के सूक्ष्म मनोभावों को भी अनुरागमय दृष्टि से परख रहे थे। भक्ति रचना, शृंगारिक रचनाओं में मिलन-विरह के सूक्ष्म मनोभाव, रति-अभिसार के विशद चित्रण, कृतित्व-वर्णन से राज पुरुषों का उत्साह वर्धन और नीति शास्त्रों द्वारा उन्हें कर्तव्य बोध देना, सामान्य जन जीवन के आहार-व्यवहार की पद्धतियाँ बताना आदि हर क्षेत्र की समीचीन जानकारियां उनकी कालजयी रचनाओं में दर्ज हैं। वे अपने मन के गौरव को जागृत करते हुए आश्रयदाता राजा कीर्ति सिंह को उनकी विपन्नता में स्वाभिमान का आश्वासन देते हुए दिखते हैं–

मान बिहना भोअना सत्तुक देएले राज।
सरन पइट्ठे जीअना तीनू कायर काज।।

महाकवि विद्यापति का अवसान 1439 ई. के कार्तिक धवल त्रयोदशी को हुआ। इस दिन देश भर में विद्यापति पर्व मनाया जाता है। विद्यापति के अवसान को लेकर प्रचलित किंवदंतियों में सुना जाता है कि उनकी चिता पर अकस्मात शिवलिंग प्रकट हो गया। पहले वहाँ पर छोटा-सा शिव मंदिर हुआ करता था जिसको बाद के दिनों में बालेश्वर नाथ नाम से बड़ा मंदिर में परिवर्तित कर दिया गया। माना जाता है कि बड़े से मन्दिर का निर्माण बालेश्वर चौधरी नामक किसी जमींदार ने किया था। वहाँ फागुन महीने में आज भी मेला लगता है। एक किंवदंती में यह भी सुना जाता है कि बी.एन.डब्ल्यू रेल पटरी का प्रारंभिक नक्शा विद्यापति की चिता से होकर गुजर रहा था। रेल पथ निर्माण हेतु जब वहाँ के पेड़ों की डालें काटी जाने लगीं तो टहनियों से खून निकलने लगा और रेल-निर्माण के इंजीनियर घनघोर रूप से बीमार पड़ने लगे। फिर वहाँ रेल पथ को टेढ़ा किया गया।

विद्यापति के काव्य में शृंगार प्रेम और भक्ति प्रेम-

विद्यापति के काव्य को समझने के लिए तत्कालीन काव्य की मर्यादाओं को समझना जरूरी है। शृंगार और भक्ति दोनों ही मध्यकालीन साहित्य की अत्यंत प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। इन दोनों ही प्रवृत्तियों के प्रति हमने कुछ धारणाएँ बद्धमूल कर ली हैं जिनके आधार पर यदि विद्यापति के काव्य संसार को बाँटकर देखें तो पदावली के राधा-कृष्ण विषयक ज्यादातर गीत शृंगारिक हैं। पर शिव स्तुति, गंगा स्तुति, काली वंदना, कृष्ण प्रार्थना आदि गीतों में प्रमुखता से भक्ति भाव है। विद्यापति के यहां न तो भक्तिकालीन कवियों की तरह स्पष्ट एकेश्वरवाद दिखेगा और न ही रीतिकालीन शृंगारिक कवियों की तरह लोलुप भोगवाद। विद्यापति की 'पदावली' में तो भक्ति और श्रृंगार का ऐसा घुला-मिला रूप नजर आता है कि उनके बीच की विभाजक रेखा को समझना थोड़ा कठिन है। विद्यापति के यहाँ जब-तब भक्तिपरक पदों में श्रृंगार और भक्ति का संघर्ष भी परिलक्षित होता है। उनका एक पद जो घोर शृंगारिक है- 'कि कहब हे सखि आनंद ओर, चिर दिने माधव मंदिर मोर...' (हे सखि, बहुत दिनों बाद माधव मुझे अपने कक्ष में मिले, मैं अपने उस आनंद की कथा तुम्हें क्या सुनाऊँ!)। को गाते-गाते चैतन्य महाप्रभु इस तरह विभोर हो जाते थे कि उन्हें मूर्छा आ जाती थी। डॉ बच्चन सिंह ने लिखा है कि "विद्यापति कीर्तिलता में सामाजिक और साहित्यिक परंपरा का समर्थन करते हैं तो पदावली में राधा–कृष्ण के मादक, मांसल और मुक्त शृंगार चित्रों के द्वारा उसे तोड़ते हैं। राधा–कृष्ण के नाम पर सामाजिक मर्यादाओं की तोड़–फोड़ को ठीक न मानकर बहुत से लोगों ने उन्हें भक्त कवि कह डाला है।"[3]

विद्यापति के काव्य में शृंगार- गौरतलब है कि पूरे भारतीय वाङ्मय में राधा-कृष्ण की उपस्थिति पौराणिक गरिमा और विष्णु के अवतार- कृष्ण की अलौकिक शक्ति एवं लीला के साथ है। विद्यापति के राधा-कृष्ण अलौकिक नहीं हैं, पूरी तरह लौकिक हैं, उनके प्रेम-व्यापार के सारे प्रसंग सामान्य नागरिक की तरह हैं। विद्यापति शृंगार और प्रेम के अमर गायक हैं।

उनकी 'पदावली' अत्यंत प्रसिद्ध है। यह भक्तिपरक रचना है या शृंगारपरक, इसे लेकर विद्वान विभिन्न वर्गों में विभक्त हैं। उनकी 'पदावली' में राधा-कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है। जिनके आधार पर श्यामसुन्दर दास ने विद्यापति को हिन्दी के पहले वैष्णव कृष्ण भक्त कवि माना है। जार्ज ग्रियर्सन की दृष्टि में भी विद्यापति महान भक्त कवि थे। शिव, पार्वती, गंगा, दुर्गा और श्रीकृष्ण के स्तुतिपरक पदों के आधार पर आकलन करें तो विद्यापति को भक्त कवि कहा जा सकता है, क्योंकि ऐसे पदों में एक भक्त कवि की सौम्यता और उदात्तता है, जबकि पदावली के शृंगारिक पदों में उच्छृंखलता है। पदावली में राधा-कृष्ण की भक्ति भाव की अपेक्षा उनके मांसल, मादक तथा मुक्त श्रृंगार के प्रसंग अधिक हैं। और इन्हीं प्रसंगों को देख कर रामचन्द्र शुक्ल विद्यापति को कृष्ण भक्ति परम्परा में नहीं मानते। वे व्यंग्यपूर्वक कहते हैं कि ''आध्यात्मिक रंग के चश्मे आजकल बहुत सस्ते हो गए हैं, उन्हें चढ़ाकर जैसे कुछ लोगों ने 'गीत गोबिन्द' को आध्यात्मिक संकेत बताया है, वैसे ही विद्यापति के इन पदों को भी।''[4] कवि निराला ने पदावली की मादकता को 'नागिन की लहर' कह दिया। किन्तु डॉ0 बच्चन सिंह ने 'पदावली' को देशभाषा में प्रथम रचना मानते हुए विद्यापति को हिन्दी का पहला कवि माना है। डॉ. बच्चन सिंह के शब्दों में- "विद्यापति की कविता का स्थापत्य श्रृंगारिक हैं, उसे आध्यात्मिक कहना खजुराहो के मन्दिर को आध्यात्मिक कहना है, उनके श्रृंगार में यौवनोन्माद का शारीरिक आमंत्रण है, सम्भोग का सुख है, विलास की विह्वलता, वियोग में स्मृतियों का संबल और भावुकतापूर्ण तन्मयता है।''[5] विद्यापति ने अपने दूसरे संरक्षक देव सिंह के उत्तराधिकारी शिव सिंह के साथ घनिष्ठ मित्रता की और राधा-कृष्ण संबंधी प्रेम गीतों की रचना करने पर ध्यान केंद्रित किया। उन्होंने मुख्य रूप से 1380 से 1406 के बीच लगभग पांच सौ शृंगारिक प्रेम गीत लिखे। पर अपने प्रिय सखा राजा शिव सिंह के तिरोधान (1406 ई.) के बाद उन्होंने कोई शृंगारिक पद नहीं रचा और फिर जिन गीतों/पदों की रचना की, वे शिव, विष्णु, दुर्गा और गंगा की भक्ति पूर्ण स्तुति से या फिर धर्म, समाज, प्रकृति, रीति, नीति, संगीति आदि जीवन-मूल्यों को रेखांकित करने वाले विचारों से संबंधित गीत/पद थे। 'पदावली' के शृंगारिक पदों में वयःसंधि, नायिका-भेद, नख-शिख वर्णन, मिलन-अभिसार, मान-मनुहार, संयोग-वियोग, विरह-प्रवास आदि का विलक्षण चित्र उकेरा गया है। ऐसे पदों की संख्या साढ़े सात सौ से अधिक है। भक्ति-प्रधान पदों में शिव -पार्वती लीला, नचारी, राम-वंदना, कृष्ण-वंदना, दुर्गा, काली, भैरवि, भवानी, जानकी, गंगा वंदना आदि को शामिल किया गया है। इनकी संख्या लगभग अस्सी हैं। इसके अलावा शेष पदों में ऋतु-वर्णन, बेमेल विवाह, सामाजिक जीवन-प्रसंग, रीति -नीति-संभाषण-शिक्षा आदि रेखांकित है। विद्यापति के लिए सौंदर्य और प्रेम निरूपण सबसे बड़ा धर्म और कर्म था। वे 'पदावली' के लगभग सभी पदों में सौंदर्य और प्रेम के

शिखरस्थ स्वरूप को रेखांकित करते हुए जीवन-मूल्य का संदेश देते प्रतीत होते हैं। नागरिक मन से हताशा मिटाने और राजाओं, सुलतानों के हृदय में मानवीय कोमलता भरने का इससे बेहतर उपाय संभवत उस दौर में और कुछ नहीं हो सकता था। वे एक रसज्ञ और रस भोक्ता के रूप में किसी न किसी राजा, सुलतान की दुहाई देते या नायक-नायिका को प्रबोधन-उपदेश देते हैं। पूरी 'पदावली' में प्रेम-व्यापार के हर उपक्रम- विभाव, अनुभाव, दर्शन, श्रवण, अनुरक्ति, संभाषण, स्मरण, अभिसार, विरह, सुरति वेदना, मिलन, उल्लास, सुरति-चर्चा, -बाधा, आशा-निराशा या फिर सौंदर्य-वर्णन के हर स्वरूप- नायिका भेद, वयःसंधि, सद्यःस्नाता, कामदग्धा, नवयौवना, प्रगल्भा, आरूढ़ा, स्वकीया, परकीया आदि को रेखांकित करते हुए विद्यापति सतत तटस्थ ही दिखते हैं। सौंदर्य उनके लिए अपरूप रूप है जो प्रत्येक क्षण स्वयं में नूतन रहते हुए मनुष्य के मन में पुलक, प्राणों में शक्ति और शरीर में रोमांच भर देता है–

सखि कि पूछसि अनुभव मोए।
से हो पिरित अनुराग बखानिए ।।
तिल तिल नूतन होए।
जनम अवधि हम रूप निहारल।।
नयन न तिरपति भेल।

पूरी 'पदावली' में प्रेम और सौंदर्य वर्णन के किसी भी बिंदु पर विद्यापति आत्मलीन दिखाई नहीं देते। ऐसा लगता है कि वे भगवत गीता के उपदेशक कृष्ण की भाँति अपनी 'पदावली' में अपने नायक-नायिका के मनोभावों को बिना लिप्त हुए रेखांकित कर निर्लिप्तता का संदेश देते हैं। एक डूबे हुए काव्य रसिक के इस समर्पण में ऐसी जीवनानुभूति है कि कहीं भक्ति, श्रृंगार पर और ज्यादातर जगहों पर श्रृंगार, भक्ति पर चढ़ता नजर आता है। माधव की प्रार्थना 'तोहि जनमि पुनु तोहि समाओत, सागर लहरि समाना' में भक्ति और श्रृंगार के इस सघन भाव को समझा जा सकता है। "उत्स में विलीन हो जाने का यह एकात्म (आत्मा और परमात्मा की यह एकात्मता) उनके यहां शृंगारिक पदों में बड़ी आसानी से मिलती है। अपने प्रेम-इष्ट के प्रति उपासिका का समर्पण इसी तरह का भक्तिपूर्ण समर्पण है। उनके यहाँ भक्ति और श्रृंगार की धाराएँ कई-कई दिशाओं में फूटकर उनके जीवनानुभव को फैलाती हैं और कवि के विराट अनुभव संसार को दर्शाती हैं।"[6]विद्यापति ने पदावली में कृष्ण के कामी स्वरूप को चित्रित किया गया है। यहां कृष्ण जिस रूप में चित्रित हैं वैसा चित्रण करने का दुस्साहस कोई भक्त कवि नहीं कर सकता। इसके इलावा राधा जी का भी चित्रण मुग्धा नायिका के रूप मे किया गया है। आम नागरिक की तरह उनकी नायिका विरह में व्यथित-व्याकुल होती है और नायक का स्मरण करती है, उन्हें पाने का उद्यम करती है, किसी तरह की अलौकिकता उनके प्रेम को छूती तक नहीं। उन्हें चंदन-लेप भी विष-बाण की तरह दाहक लगता है, गहने बोझ लगते हैं, सपने में भी कृष्ण दर्शन नहीं देते, उन्हें अपने जीने की स्थिति शेष नहीं दीखती। अंत में कवि नायिका को गुणवत्ती बताकर मिलन की सांत्वना के साथ प्रबोधन देते हैं। मिलन की स्थिति में प्रेमातुर नायिका सभी प्रकार से सुखानुभव लेती है। भावोल्लास से भरी नायिका अपने प्रियतम की उपस्थिति का सुख अलग-अलग इंद्रियों से प्राप्त कर रही है- रूप निहारती है, बोल सुनती है, वसंत की मादक गंध पाती है, यत्न पूर्वक क्रीड़ा-सुख में लीन होती है, रसिकजन के रसभोग का अनुमान करती है। अतिशय श्रृंगार का एक वर्णन विद्यापति की पदावली से देखिए-

लीलाकमल भमर धरु वारि।
चमकि चलिल गोरि-चकित निहारि।
ले भेल बेकत पयोधर सोम। कनक-कनक हेरि काहिन लोभ।
आध भुकाएल, बाघ उदास। केचे-कुंभे कहि गेल अप्प आस।

जयदेव और विद्यापति ने जो चित्र अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया है वह महाभारतकालीन धर्मस्थापना वाले श्रीकृष्ण से नितान्त भिन्न है। महाभारत में राधा जहां श्रीकृष्ण की प्रेरक शक्ति के रूप में दिखाई देतीं हैं, वहीं पदावली में विद्यापति ने कृष्ण की उद्दाम कामवासनाओं से प्रेरित राधा का रूप देखने को मिलता है। [11] विद्यापति ने नारी का नख-शिख वर्णन अपनी कविता में किया है, तथा मूलतः शृंगार रस का प्रयोग किया हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उनकी शृंगारी मनोवृत्ति थी। अतः उनसे भक्त जैसे काव्य-व्यवहार की अपेक्षा करनाकदाचिद् एक तरह का उनसे अन्याय ही है। उन पर गीतगोविन्द के रचनाकार जयदेव का प्रभाव है। [10] विद्यापति ने जयदेव की गीत गोविंद की परंपरा में राधा-कृष्ण विषयक प्रेम और सौंदर्य का श्रृंगारिक वर्णन किया है। फिर भी विद्यापति के गीत जयदेव के गीतगोविंद से अलग और मौलिक हैं। उनकी मौलिकता इस बात में है कि वे जयदेव की तरह राधा–कृष्ण का आश्रय लेकर भी लोकोन्मुख हो सके हैं। जयदेव ने कृष्ण के दृष्टिकोण से लिखा जबकि विद्यापति ने राधा के दृष्टिकोण से। विद्यापति के गीत एक दूसरे से स्वतंत्र होते हुए भी राधा-कृष्ण के रूप में एक युगल के अलगाव और पुनर्मिलन की अति-महत्वपूर्ण कहानी बताते हैं। "एक युवा लड़की के रूप में , उसका धीरे-धीरे जागता हुआ यौवन, उसका शारीरिक आकर्षण, उसका शर्मीलापन, संदेह और झिझक, उसकी भोली मासूमियत, प्यार की उसकी ज़रूरत, उत्साह के प्रति उसका समर्पण, उपेक्षित होने पर उसकी पूरी पीड़ा - इन सभी का वर्णन किया गया है एक महिला की बात और अतुलनीय कोमलता के साथ।"[8]

विद्यापति के काव्य में भक्ति-वैसे तो अभी भी कुछ लोग मिल जाएंगे जो भक्ति और प्रेम को दो दिशाओं का व्यापार मानते हैं। वे सोचते हैं कि जब तक मनुष्य को ज्ञान नहीं होता, युवावस्था के उन्माद में वह स्त्री के रूप जाल में मोहवश फँसा रहता है, भोग में लिप्त रहता है; जब आँखें खुलती हैं, ज्ञान चक्षु खुलते हैं, तब वह भक्ति-भाव से ईश्वर की ओर मुड़ता है। पर ऐसा सोचना सर्वथा उचित नहीं है। भक्ति और श्रृंगार- भले ही दो भाव हों, पर वास्तविक अर्थों में दोनों का मर्म एवं प्रस्थान बिंदु एक ही है। दोनों ही भाव व्यक्ति के मन में प्रेम से शुरू

हैं और दोनों ही में समर्पण भाव रहता है, स्वीकार भाव रहता है। यानी दोनों का मूल– अनुराग और समर्पण है। प्रेम में प्रेमिका, प्रेमी के प्रति या प्रेमी प्रेमिका के प्रति समर्पित होते हैं, ठीक इसी तरह भक्ति में भक्त, भगवान के प्रति समर्पित होते हैं। मीराबाई की काव्य साधना का उदाहरण हमारे सामने है, उन्हें कृष्ण की प्रिया मानें अथवा कृष्ण की भक्त, संशय हर स्थिति में मौजूद रहेगा। कुछ समालोचक ऐसे हैं जो विद्यापति के श्रृंगारिक पदों की ओर ध्यान दिए बगैर ही उनके प्रार्थना सम्बन्धी पदों के आधार पर ही उन्हें भक्त कवि मान लेते हैं। यह सत्य है कि उन के कुछ भक्ति परक पद हैं परन्तु श्रृंगार परक रचना अधिक है यहां तक कि भक्ति परक पदों में भी श्रृंगार का अतिशय वर्णन किया गया है। कुछ आलोचकों का कहना है कि विद्यापति ने पदावली की रचना वैष्णव साहित्य के रूप में की है। गीतगोविन्द की भाँति उनकी पदावली में राधा-कृष्ण की प्रेममयी मूर्ति की झांकी दृष्टिगोचर होती है। उन्होंने अपने इष्ट की उपासना सामाजिक रूप में की है। इस दृष्टिकोण से उन्होंने विद्यापति के उन पदों को उद्धृत किया है जो विद्यापति ने राधा, कृष्ण, गणेश, शिव आदि की वन्दना के लिए लिखे हैं। राधा की वन्दना-विषयक एक पद देखिए-

देखदेख राधा-रूप अपार। अपुरुष के बिहि आनि मिला ओल।
खिति-बल लावनि-सार। अंगहि अंग अनंग मुरछायत,
हेरए पडए अधीर।

विद्यापति के नख-शिख वर्णनों के कारण कुछ लोगों को उनकी भक्ति-भावना पर ही शक होने लगता है। पर महाकवि 'अमृत्त तेजि किए हलाहल पीउल' कहकर स्वयं श्रृंगार और भक्ति के सारे द्वैध को खत्म कर देते हैं। अपने शृंगारिक गीतों में सौंदर्य, समर्पण, रमण, विलास, विरह, मिलन के इतने पक्षों में तल्लीन 'की यौवन पिय दूरे' के कवि विद्यापति, भक्तिपरक गीतों में एकदम से विनीत हो जाते हैं। पूर्व में किए गए रमण-विलास को सर्वथा निरर्थक बताते हुए 'तोहे भजब कोन बेला' कहकर पछताते हैं; 'तातल सैकत वारि बिंदु सम सुत्त मित रमणि समाजे' कह देते हैं। शृंगारिक गीतों की नायिका के मनोवेग को जीवन देने वाले विद्यापति उस "रमणि' को तप्त बालू पर पानी की बूँद के समान कहकर भगवान के शरणागत होते हैं। यहाँ कवि की शालीनता स्पष्ट दिखती है। दो काल खंडों और दो मन स्थितियों में एक ही रचनाकार द्वारा रचना धर्म का यह फर्क कवि का पश्चाताप नहीं, उनकी तल्लीनता प्रदर्शित करता है कि वह जहाँ कहीं है, मुकम्मल है। जितना सांस्कृतिक जागरण के पुरोधा पुरुष का व्यक्तित्व प्रखर होता है, उतना ही उनका समन्वयवादी स्वरूप भी बहुत समादृत है। उस समय भारत में विशिष्टाद्वैत मत के प्रभाव से विष्णु-लक्ष्मी, कृष्ण-राधा आदि युगल मूर्ति की उपासना होने लगी थी तब विद्यापति ने भी गौरी-शंकर की युगलमूर्ति को अपना इष्ट देव बनाया–

लोढबे कुसुम तोड़ब बेल पात। पूजब सदा शिव गौरी के सात।।

विद्यापति के काव्य में लोक जीवन-सामाजिक समरसता के प्रतीक और बहुभाषा विज्ञ महाकवि विद्यापति का रचना-बहुआयामी था। जीवन व्यवहार के हर पहलू पर उनकी दृष्टि सावधान रहती थी। दरबार-संपोषित होने के बावजूद उनका एक भी रचनात्मक उद्यम कहीं चारण-धर्म में लिप्त नहीं हुआ। उन्होंने अपनी लगभग हर रचना से समकालीन चिंतक, सामाजिक अभिकर्ता और राजकीय सलाहकार की प्रखर नैतिकता का निर्वाह किया। उनकी लेखनी में केवल श्रृंगार और भक्ति रस ही नहीं अपितु जीवन का मर्म और सार भी मिलता है। "जिस तरह कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' और मार्क्स ने 'दास कैपिटल' लिखा, उसी तरह विद्यापति ने 'पुरुष परीक्षा' लिखी। इसमें लोक को बताया कि पुरुष या मनुष्य कैसा होना चाहिए? उसकी कसौटी निर्धारित की। 'लिखनावली' में उन्होंने बताया कि देश का शासन तंत्र कैसा होना चाहिए? राजा को कैसा होना चाहिए? उन्होंने उस काल में मणिमंजरा और गोरक्षविजय जैसे बेहतरीन नाटकों की भी रचना कर एहसास कराते हैं कि वे अच्छे नाटककार भी थे।"[9]लोक जीवन की व्यावहारिकता, लालित्यपूर्ण अर्थोत्कर्ष तथा चमत्कारिक सांगीतिकता से भरे विद्यापति के पद आम जन जीवन में अत्यंत लोकप्रिय हुए। उनकी पदावली में व्यक्ति के सामाजिक जीवन-यापन के अनेक प्रकरण- जन्म, नामकरण, मुंडन, उपनयन, विवाह, पूजा-पाठ, लोकोत्सव आदि उपलब्ध हैं। आज भी मैथिल जन जीवन का कोई उत्सव विद्यापति के गीत के बिना संपन्न नहीं होता। उनके यहां स्त्री संबंधी कई विरोधाभासी चीजें भी मिलती हैं। वे एक तरफ स्त्री की विवशता और पराधीनता को रेखांकित करते हैं तो दूसरी तरफ स्त्री को भोग्या बताते हैं। स्त्री के पक्ष में स्वयं को खेड़ा नजर न पाते हुए भी विद्यापति ने अपने समय के रूढ़ि जर्जर समाज की स्त्री विरोधी परंपराओं को सामने रख अनेक जगहों पर स्त्री मन को छुआ है। अपने एक पद में जब वे बच्चे से ब्याही गई एक युवा स्त्री की पीड़ा को भी व्यक्त करते हैं तो बेहद प्रासंगिक और अर्थपूर्ण लगते हैं।

विद्यापति के काव्य का भाषा सौंदर्य-भाषिक संरचना के गुणसूत्रों से परिचित विद्वान इस बात से सहमत होंगे कि रचनाकार से मुक्त हुई गेयधर्मी रचना लोक-कंठ में वास करती हुई जाने अनजाने अपने मूल स्वरूप से कुछ-न-कुछ भिन्न हो जाती है। लोक-कंठ से संकलित सामग्री का तो यह अनिवार्य विधान है कि संकलन तक आते-आते उस रचना में स्थानीयता के कई अपरिहार्य रंग चढ़ जाते हैं। विद्यापति की 'पदावली' भी इसका अपवाद नहीं है। चौदहवीं से बीसवीं शताब्दी तक के छह सौ वर्षों की यात्रा में इन पदों में कब, कहाँ और किसके कौशल से क्या जुड़ा, क्या छूटा, यह जान पाना मुश्किल है। मतलब रचनाकाल की निश्चित जानकारी उपलब्ध न होने के बावजूद कहा जा सकता है कि विद्यापति के पद एक लंबे समय-फलक में रचित है। अपने आश्रयदाता शिव सिंह के तिरोधान के बाद विद्यापति अनेक वर्षों तक सांस्कृतिक रूप से समृद्ध नेपाल के एक तराईक्षेत्र राजबनौली में रहकर भी रचना कर्म किया। यही कारण है कि उनकी रचनाओं विशेषकर 'पदावली' के पदों का

संकलन तीन भिन्न-भिन्न भाषिक समाज– मिथिला, बंगाल और नेपाल के लिखित एवं मौखिक स्रोतों से प्राप्त हुआ है। इसके अलावा एक तथ्य यह भी है कि इन पदों के प्रारंभिक संकलनकर्ताओं की मातृ भाषा मैथिली नहीं थी। "इसलिए ध्वनियों, शब्दों, पदों और संदर्भ-संकेतों को लिखित रूप में व्यक्त करते हुए निश्चय ही परिवर्तन आ गया होगा। प्राप्त जानकारी के अनुसार उनके पदों की संख्या लगभग नौ सौ हैं। स्पष्ट है कि विद्यापति के जीते जी 'पदावली' की पंक्तियाँ मुहावरों और कहावतों की श्रेणी पा गई थीं।"[10] विद्यापति के सभी पद मात्रिक सम छंद में रचित हैं। उल्लेखनीय है कि उल्लास, नाग, रंजनी, गीता छंद के निर्माता विद्यापति ही हैं, क्योंकि उनसे पूर्व के किसी रचनाकार के यहाँ ये चारों छंद नहीं दिखते। उनके अधिकांश पदों की रचना एक ही छंद में हुई है, पर कई पदों में मिश्रित छंद का भी उपयोग हुआ है। मतलब दो-तीन या अधिक छंदों के चरणों का मेल किया गया है। अहीर, लीला, महानुभाव, चंडिका, हाकलि, चौपाई, चौबोला, सुखदा, उल्लास, रूप माला, नाग, सरसी, सार, माधवी, झूलना आदि का स्वतंत्र प्रयोग किया है तो अखंड, निधि, शशिवदना, मनोरम, कज्जल, रजनी, गीता, विष्णुपद, हरिगीतिका, ताटंक, वीर, सवैया आदि छंदों के चरणों को अन्य छंदों में जोड़कर किया गया है।

विद्यापति ने मिथिला के लोगों को 'देसिल बयना सब जन मिट्ठा' का सूत्र दे कर उत्तरी-बिहार में लोकभाषा की जनचेतना को जीवित करने का महान् प्रयास किया है। मिथिलांचल के लोकव्यवहार में प्रयोग किये जानेवाले गीतों में आज भी विद्यापति की शृंगार और भक्ति-रस में पगी रचनाएँ जीवित हैं। मैथिल कवि और लेखक अजीत आजाद कहते हैं कि "भारत में कभी सात हजार से अधिक भाषाएं थीं जो अब सिमट कर 400 तक आ गई हैं। क्षेत्रीय भाषाओं को प्रतीक पुरुष की जरूरत थी, विद्यापति उसके ही ध्वजवाहक हैं। वे मिथिला संस्कृति में लोक देवता की तरह है। यही कारण है कि उनके मृत्यु दिवस यानी बरसी पर देश भर में विद्यापति पर्व मनाया जाता है।" [11]

विद्यापति के पदों की लोकप्रियता में उनकी अपनी सांगीतिकता एवं जीवनोपयोगिता के अलावा लोक-रंजक भाषा की भी उल्लेखनीय भूमिका है। उनकी 'पदावली' के एक-एक पद कई-कई रागों में गाए जाते हैं। अपनी रचनाशीलता में योजनाबद्ध ढंग से आगे बढ़ रहे विद्यापति को अपने उद्देश्य की प्राप्ति हेतु अभिव्यक्ति के सभी अवयवों के साथ-साथ विलक्षण रूप से संपन्न भाषा पर भी पूर्ण अधिकार था। मैथिली की मर्मज्ञ डॉ. अरुणा चौधरी विद्यापति की प्रासंगिकता के सवाल पर कहती हैं कि "विद्यापति की भाषा सहज और सरल होने के साथ-साथ आम आदमी के लिए गेयधर्मिता वाली है। इसमें राग-लय-ताल सब है। उनका लिखा गीत 'जय-जय भैरवि असुर भयाउनी' के बिना शायद ही मिथिला का कोई आयोजन, कोई समारोह होता है। आज भी मिथिला में देवी वंदना हो, शादी-विवाह हो, पर्व-त्यौहार हो, मधुश्रावणी हो, विद्यापति के गीत ही जुबान पर होते हैं।"[12]

निष्कर्षत:-विद्यापति के अनेक पदों से यह स्पष्ट है कि विद्यापति वास्तव में कोई वैष्णव नहीं थे, केवल परम्परा के अनुसार ही उन्होंने ग्रंथ के आरम्भ में गणेश आदि की वन्दना की हैं। उनके पदों को भी दो भागों में बांट सकते हैं। 1- राधाकृष्ण विषयक, 2 शिवगौरी सम्बन्धी। राधा कृष्ण सम्बन्धी पदों में भक्ति-भावना की उदात्तता एवं गम्भीरता का अभाव हैं तथा राधा कृष्ण विषयक पदों में विद्यापति ने लौकिक प्रेम का ही वर्णन किया है। राधा और कृष्ण साधारण स्त्रीपुरुष की ही तरह परस्पर प्रेम करते प्रतीत होते हैं तथा भक्ति की मात्रा न के बराबर है। इस तरह कहा जा सकता है कि विद्यापति शृंगारी कवि हैं उनके पदों में माधुर्य पग पग पर देखा जा सकता हैं। उन्होंने राधाकृष्ण के नामों का प्रयोग आराधना के लिए नहीं किया है अपितु साधारण नायक के रूप मे पेश किया है तथा विद्यापति का लक्ष्य पदावली में श्रृंगार निरूपण करना है। कवि के काव्य का मूल स्थायी भाव श्रृंगार ही है। धार्मिकता, दार्शनिकता या आध्यात्मिकता को खोजना असम्भव है। शिव-गौरी सम्बन्धी पदों में वासना का रंग नहीं है तथा इन्हें भक्ति की कोटि में रखा जा सकता है। [12]

****

संदर्भ सूची

1. डॉ0 नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0-72
2. डॉ0 नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ072
3. इग्नू mhd-1 इकाई ३ का ३.२ विद्यापति का युग
4. शिवदान सिंह चौहान, हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष पृ0-67
5. डॉ0 बच्चन सिंह, आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ0-76
6. डॉ0 हरीश चन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ042
7. डॉ0 भोला नाथ तिवारी, हिन्दी साहित्य, पृ036
8. डॉ0 नगेन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ0112
9. डॉ0 गणपति चन्द्र गुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, पृ080
10. डॉ0 राम खिलावन पाण्डे, हिन्दी साहित्य का नया इतिहास, पृ034
11. विद्यापति-पदावली, प्रथम भाग, सं॰ शशिनाथ झा एवं दिनेश्वरलाल 'आनन्द', बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, द्वितीय संस्करण-1972, पृष्ठ-78 (भूमिका).
12. पंकज झा, ए पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ लिटेरेचर : विद्यापति एंड द फिफ्टीन्थ् सेंचुरि. पृ0 2. आई॰ऍस॰बी॰ऍन॰ 978-0-19-909535-3.